कश्मीर में पंडित टाइटल क्यों लगाते हैं मुसलमान ?

माजिद जहांगीर

भारत प्रशासित कश्मीर में दो तरह के पंडित रहते हैं। एक पंडित वे हैं जिनका धर्म हिन्दू है और दूसरे पंडित वे हैं जो मुसलमान हैं।

ऐसे में सवाल उभरता है कि कश्मीर के कुछ मुसलमान अपने नाम के साथ पंडित टाइटल क्यों लगाते हैं?

गुरुवार रात कश्मीर में जामा मस्जिद के बाहर जिस पुलिस ऑफ़िसर की हत्या हुई उनका नाम अयूब पंडित था।

अक्सर लोगों को यह ग़लतफ़हमी हो जाती है कि कश्मीर में जिन नामों के साथ पंडित लगा है वे हिन्दू हैं। लेकिन ऐसा नहीं है।

कश्मीर में कुछ मुसलमान भी पंडित टाइटल लगाते हैं। ये वे मुसलमान हैं जिन्होंने इस्लाम कबूल किया है और ब्राह्मण से मुसलमान हो गए।

मोहम्मद देन फौक अपनी मशहूर किताब कश्मीर कौम का इतिहास में पंडित शेख नाम के चैप्टर में लिखते हैं, कश्मीर में इस्लाम आने से पहले सब हिन्दू ही हिन्दू थे। इनमें हिन्दू ब्राह्मण भी थे। इसके साथ ही दूसरी जाति के भी लोग थे। लेकिन ब्राह्मणों में एक फिरका ऐसा भी था जिनका पेशा पुराने ज़माने से पढ़ना और पढ़ाना था।

उन्होंने इस किताब में लिखा है, इस्लाम क़बूल करने के बाद इस फिरके ने पंडित टाइटल को शान के साथ कायम रखा। इसलिए ये फिरका मुस्लिम होने के बावजूद अब तक पंडित कहलाता रहा है। इसलिए मुसलमानों का पंडित फिरका शेख भी कहलाता है। सम्मान के तौर इन्हें ख़्वाजा भी कहते हैं। मुसलमान पंडितों की ज्यादा आबादी ग्रामीण इलाकों में हैं।

कश्मीर के वरिष्ठ लेखक और इतिहासकार मोहम्मद यूसुफ़ टेंग कहते हैं कि कश्मीर में इन मुसलमान पंडितों की आबादी क़रीब पचास हज़ार के करीब होगी। टेंग इन मुसलमान पंडितों के बारे में कहते हैं कि ये सब वे लोग हैं जिन्होंने इस्लाम कबूल किया है।

उन्होंने बीबीसी हिन्दी को बताया, कश्मीरी पंडितों को हिन्दू नहीं कहते थे, उनको पंडित कहते थे। पंडित का मतलब ब्राह्मण है और ब्राह्मण शिक्षक को भी कहते हैं।

टेंग बताते हैं कि ये जो मुसलमान पंडित हैं ये कश्मीर के मूल निवासी हैं। ये बाहरी नहीं है। असली कश्मीरी तो ये पंडित ही हैं। हम मुसलमान भट क्यों लिखते हैं क्योंकि हमने धर्म परिवर्तन किया है। पंडित भी बट लिखते हैं। बट का मतलब है पंडित जिसको हम कश्मीरी में बटा कहते हैं यानी कश्मीर का हिन्दू पंडित। इसी तरह पंडितों में पीर भी हैं जबकि पीर मुसलमान अपने साथ जोड़ते हैं।

टेंग कहते हैं कि जिन मुसलमानों ने अपने साथ पंडित लगा रखा है वे इस्लाम क़बूल करने से पहले सब से ऊँचा वर्ग था। ये ब्राह्मणों में भी सबसे बड़ा वर्ग था।

वह ये भी कहते हैं कि कश्मीर में असल नस्ल पंडित नहीं थी बल्कि जैन थे और बाद में बौद्ध थे। इसके के बाद पंडितों का यहाँ राज हो गया।

टेंग कहते हैं कि दूसरे कश्मीरी मुसलमानों ने उन मुसलमानों पर कोई आपत्ति नहीं जताई जिन्होंने पंडित अपने नाम के साथ जोड़कर रखा है। (बीबीसी)

विनोबा का आपातकाल को अनुशासन पर्व कहना सबसे गलत समझी–समझाई कहानी है

अव्यक्त

आचार्य विनोबा भावे ने आपातकाल को अनुशासन पर्व कहकर एक तरह से सरकार और सत्ता का विरोध किया था लेकिन आजतक इस घटना का उल्टा मतलब ही निकाला जाता है

आपातकाल के बारे में गंभीर से गंभीर चर्चा में भी यदि विनोबा भावे का जिक्र आता है तो वह तुरंत ही इस आक्रोश के साथ समाप्त हो जाता है कि उनकी कौन कहे उन्होंने तो आपातकाल को 'अनुशासन पर्व' कह कर अपनी 'मौन या अप्रत्यक्ष स्वीकृति' दे दी थी। औरों की तो जाने दें विनोबा की आध्यात्मिक गहराई को निकट से जानने-समझने वाले स्वयं सरल स्वभावी जयप्रकाश नारायण या जेपी तक ने विनोबा को तत्कालीन लोकप्रिय और संकीर्ण कसौटियों पर ही कस दिया।

वास्तव में उस समय सत्ता के दुरुपयोग और प्रचंड व्यवस्था-विरोध की दोतरफा लहर चल रही थी। ऐसे में कोई किसी को शुद्ध नज़रिए से समझ पाता इसकी गुंजाइश ही नहीं बची थी। जबकि विनोबा के समग्र साहित्य को पढ़ने और उनकी जीवन-वृत्ति को समझने के बाद कोई सामान्य शोधकर्ता भी समझ सकता था कि इस कहानी में जरूर कुछ न कुछ गड़बड़ है। दरअसल आपातकाल के इस घटनाक्रम की कुछ कड़ियां बीच से कहीं गायब कर दी गईं। इन कड़ियों को जोड़ते हुए स्पष्ट रूप से पता चल जाता है कि हमारे बुद्धिजीवी और हमारा समकालीन भारतीय समाज तक भारत के अपने शास्त्रीय प्रसंगों, शब्दों, मुहावरों से कितना कट चुका है और उनसे पूरी तरह अनभिज्ञ हो चुका है।

आइए देखते हैं कि इस आरोप के पीछे कि विनोबा ने आपातकाल को 'अनुशासन-पर्व' कहकर इसका समर्थन किया था, आखिर असल में हुआ क्या था।

विनोबा ने अपने आजीवन

आध्यात्मिक साधना के क्रम में ही 25 दिसंबर, 1974 को एक वर्ष के लिए मौन में जाने का व्रत लिया था। यानि आपातकाल और छात्र आंदोलन इत्यादि से छह महीने पूर्व ही। 25 जून, 1975 को आपातकाल की घोषणा हो गई। उसके बाद संजय गांधी के इशारों पर और इंदिरा गांधी के नाम से चलने वाली सरकार और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में आंदोलनकारियों के बीच अपने-अपने रवैये को न्यायोचित ठहराने की होड़ शुरू हुई। लेकिन जेपी और इंदिरा गांधी के अलावा इस पूरी परिघटना का एक तीसरा कोण भी था। वह था आचार्य विनोबा भावे का।

विनोबा, बालकोवा और शिवाजी भावे के पिता नरहरि भावे ने अपनी तीनों के तीनों बेटों को महात्मा गांधी को लगभग दान में दे दिया था। तीनों ही नैष्ठिक बाल ब्रह्मचारी थे। विनोबा उस दौर के सबसे प्रखर और निर्विवाद व्यक्तित्वों में से थे। हालांकि बाद के इतिहास, राजनीति और समाज की बौद्धिक लापरवाही की वजह से आज हम विनोबा को भारत की सबसे गलत समझी और आंकी गई शख्सियत कह सकते हैं।

विनोबा मूलत: एक संत थे और उन्होंने अभी तक राजनीति और राजसत्ता से स्वयं को बचाकर रखा था। उन्होंने आज़ादी के बाद भी खुलकर कई अवसरों पर राजनीति के प्रचलित स्वरूप की मौलिक आलोचनाएं की थीं और किसी चुनाव में वोट डालने नहीं गए थे। वे एक स्वतंत्रचेत्ता और प्रयोगधर्मी आचार्य थे जिन्हें किसी का भय और किसी के प्रति राग-द्वेष की भावना नहीं थी। इसलिए उनकी स्वीकार्यता, निर्भीकता और तटस्थता का स्तर ऐसा था कि भूदान आंदोलन के दौरान जहां कहीं संभव होता था छोटे से छोटे मदरसे तक उनके रात्रि-विश्राम और प्रवचन के लिए बढ़-चढ़ कर प्रबंध करते थे।

यह वह दौर था जब भारत के देहाती क्षेत्रों में भी महिलाएं हथेली में समा जाने वाली पुस्तिका 'विनोबा भावे का अरमान' को हनुमान चालीसा की तरह पढ़ती थीं। लेकिन अन्य सभी शुद्ध संस्थाओं और व्यक्तित्वों की भांति ही राजनीति उन्हें भी अपवित्र करने के अपने लोभ से बाज नहीं आई। इंदिरा गांधी और जयप्रकाश नारायण दोनों से ही इतने आत्मीय और गुरुवत संबंध होने की वजह से आपातकाल का यह तीसरा कोण सबके लिए एक बहुत बड़ा प्रश्न बन गया था। धुर-विरोधी दोनों ही पक्षों ने समाधान और हस्तक्षेप के लिए विनोबा की ओर सहज ही देखा। विनोबा की अध्यात्मनिष्ठ निष्पक्षता को बिना समझे दोनों ही पक्ष उन्हें अपने-अपने पाले में ले लेने की जिद और हड़बड़ाहट में थे।

लेकिन जहां एक ओर जेपी के नाम पर इकट्ठा हुआ विपक्ष भयानक प्रतिक्रिया, भय और द्रोह की आग में जल रहा था, वहीं इंदिरा गांधी के नाम पर शासन चला रहे संजय गांधी का दमनकारी कुनबा भी अहंकार और सत्ता के नशे में अंधा हो चुका था। एक बात और ध्यान देने की थी कि जयप्रकाश नारायण के खेमे में उनके इर्द-गिर्द इकट्ठी भेड़ियाधसान भीड़ में जिस प्रकार के लोग थे उनको विनोबा के जीवन और चिंतन की वह आध्यात्मिक समझ नहीं थी जिसके कायल स्वयं जेपी थे। **(बाकी पेज 5 पर)**

ओह, विपक्ष ने कैसे दुत्कारा आम आदमी पार्टी को !

राजेश जोशी

ऐसे तो सेकुलर जमात ने कभी उस बीजेपी को भी नहीं दुत्कारा जिसके नेतृत्व में सुप्रीम कोर्ट में हलफ़नामा दायर करने के बावजूद अयोध्या में बाबरी मस्जिद को ढहा दिया था।

कुछ समय तक जरूर जॉर्ज फर्नांडिस, नीतीश कुमार और शरद यादव असमंजस में रहे पर फिर धर्मनिरपेक्षता का चोला पहने भगवा गठबंधन में शामिल हो गए और बीजेपी का अलगाव ख़त्म हो गया।

मगर पिछले हफ्ते राष्ट्रपति पद का संयुक्त उम्मीदवार तय करने के लिए कांग्रेस के नेतृत्व में हुई विपक्षी पार्टियों की बैठक में जिस तरह सोनिया गांधी की कांग्रेस और शरद पवार की राष्ट्रवादी कांग्रेस ने आम आदमी पार्टी को दुरदुराया, वैसा उदाहरण पहले कहाँ मिलता है?

शरद यादव को शिकायत है कि आम आदमी पार्टी सीनियर नेताओं की इज़्ज़त नहीं करती। कांग्रेस कहती है कि देश भर में आप की कोई हैसियत नहीं है।

सोनिया गांधी को शिकायत इसलिए होगी क्योंकि उनके दामाद रॉबर्ट वाड्रा पर वार करने वालों में अरविंद केजरीवाल सबसे आगे थे।

शरद पवार की राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी भी आप को विपक्ष की गोलबंदी में शामिल नहीं करना चाहती।

मार्क्सवादी पार्टी के महासचिव सीताराम येचुरी और पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी जरूर अरविंद केजरीवाल को विचार विमर्श में शामिल करना चाहती थीं पर उनकी चली नहीं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को अरविंद केजरीवाल फूटी आंख नहीं सुहाते और अब विपक्ष भी उन्हें राजनीति का बहिरागत मान रहा है।

सोनिया गांधी उस शरद पवार के साथ तो एक मंच पर बैठ सकती हैं जिन्होंने उनके विदेशी मूल के सवाल पर कांग्रेस पार्टी तोड़कर राष्ट्रवादी कांग्रेस बना ली, लेकिन उन्हें केजरीवाल को साथ लेने पर एतराज है।

कांग्रेस के कुछ नेता केजरीवाल को आरएसएस का आदमी और आम आदमी पार्टी को बीजेपी की बी-टीम मान रहे हैं पर उन्हें शिवसेना से आए उग्र हिंदुत्व के समर्थक रहे, बाल ठाकरे के चरण स्पर्श करने वाले संजय निरुपम को मुंबई की कमान सौंपने पर कोई एतराज नहीं है।

आखिर क्या वजह है कि जब से आम आदमी पार्टी दिल्ली राज्य में सत्ता में आई है तभी से वो सबके आंख की किरकिरी बनी हुई है?

इसे समझने के लिए पहले एनजीओ की राजनीति को समझना होगा क्योंकि राजनीति में आने से पहले अरविंद केजरीवाल एनजीओ आंदोलन से जुड़े थे और एनजीओ के तौर तरीकों को वो ही भारतीय राजनीति में लाए हैं।

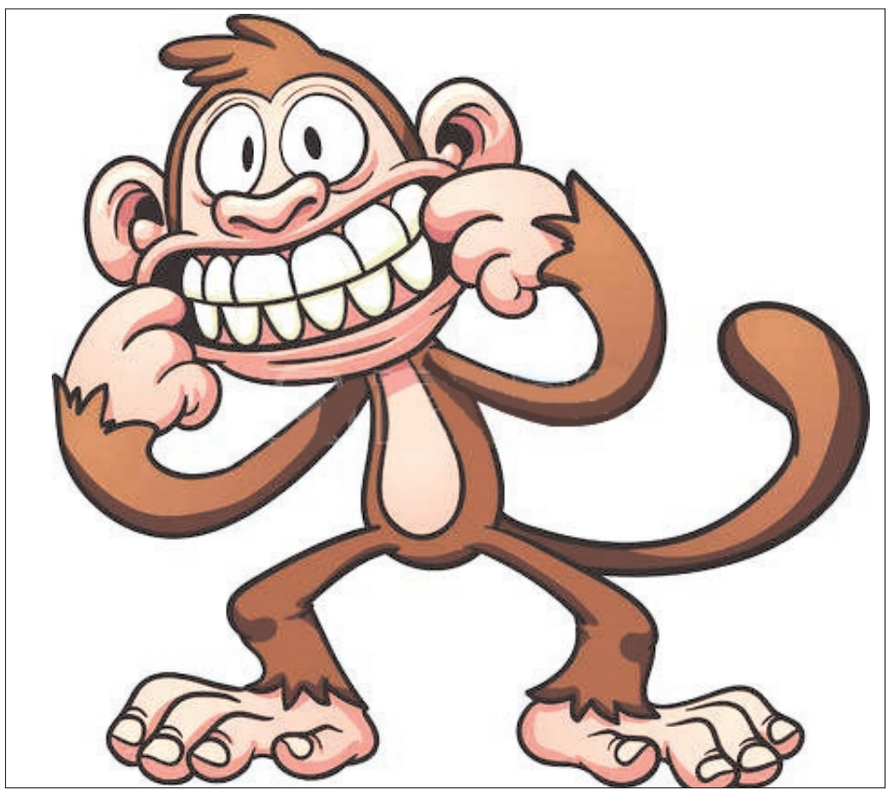

एनजीओ का काम करने वाले जानते हैं कि उनके लिए हर कार्रवाई एक प्रोजेक्ट होता है— भूख से लेकर पर्यावरण संरक्षण, युवा लड़के लड़कियों में कंडोम को प्रचलित करने से लेकर दलित और महिला सशक्तिकरण, आदिवासी नृत्य और कला को अंतरराष्ट्रीय मंच पर ले जाने से लेकर भूमिहीन किसानों का आंदोलन तक।

प्रोजेक्ट हासिल के लिए पहले प्रोपोजल बनाया जाता है, फिर उसे डोनर या दानदाता संगठनों को भेजा जाता है और ऐसे पेश करना होता है कि अगर ये प्रोजेक्ट नहीं हुआ तो धरती फट जाएगी, आसमान आग उगलने लगेगा, महामारी फैल जाएगी और गणतंत्र ध्वस्त हो जाएगा।

प्रोजेक्ट के लिए फंडिंग मिल गई तो एनजीओ से जुड़े सभी कार्यकर्ता जी जान से उसे पूरा करने में जुट जाते हैं। इस काम के लिए आदर्शवादी नौजवान लड़के-लड़कियों की जरूरत होती है।

विश्वविद्यालय, आर्ट्स कॉलेज, आर्किटेक्चर स्कूल और कला-संस्कृति से जुड़े संस्थान ऐसे नौजवानों की अबाध सप्लाई सुनिश्चित करते हैं। इन नौजवानों को प्रोजेक्ट की जरूरत और अहमियत बताई जाती है। ये नौजवान फौज एक बड़े सामाजिक बदलाव की उम्मीद में कुर्ता पहने और झोला टांगे दिन रात काम में जुट जाती है। उनके हाथों में ढपली और गिटार होते हैं और होंठों पर इंकलाब के गीत। उनकी आँखों में नए समाज का सपना होता है और उनके जज़्बों में व्यवस्था विरोध की ठसक। पर जैसे ही एक प्रोजेक्ट खत्म होता है, दूसरे की तैयारी शुरू हो जाती है।

दिल्ली के मुख्यमंत्री के खिलाफ एमसीडी कर्मचारियों का प्रदर्शन। कर्मचारी अपने वेतन की मांग कर रहे हैं। एनजीओ मॉडल इस मायने में कमाल का मॉडल है कि वो व्यवस्था विरोध और प्रगतिशील राजनीति करने की गफलत बनाए रखता है। **(बाकी पेज 5 पर)**

एक कतरा लेखन का...

हाथ का हाथ ही रहना

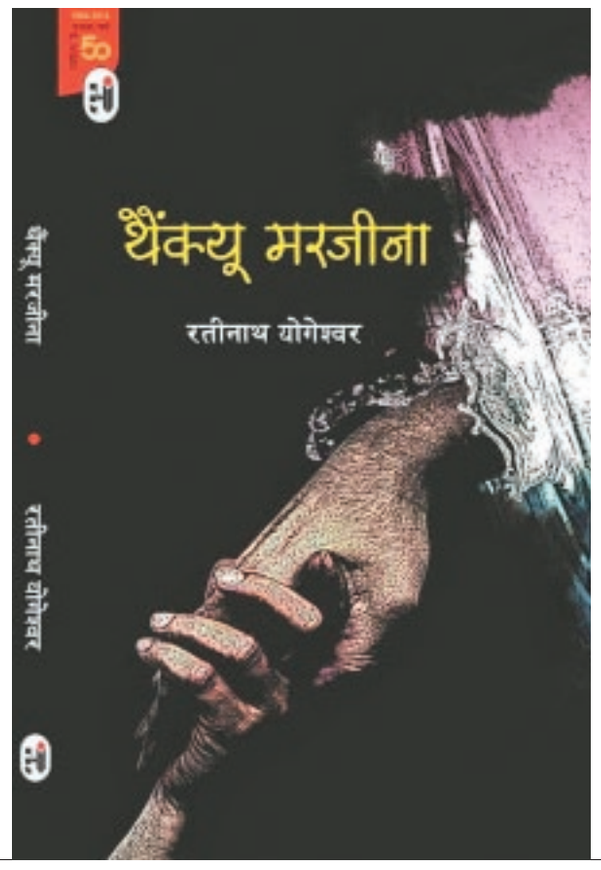

युवा कवि रतीनाथ योगेश्वर की कविताएँ बहुत दिनों से पढ़ रहा हूँ - साहित्य की लगभग सभी अच्छी पत्रिकाओं में। नाटक की पाँच और संस्मरण की एक किताब के बाद उनका पहला और दुरूस्त काव्य संग्रह थैंक्यू मरजीना अभी कुछ देर पहले पहुंचा है मेरे पास। साहित्य भंडार, इलाहाबाद से।

पहले पाठ में कुछ कविताओं से गुजर चुका हूँ। सहज शब्दों से ही कथ्य या भाव की मारकता यानी कविता के सभी उदात्त लक्षणों से परिचित करानेवाली शऊर के साथ हैं ये कविताएं। ऐसी कविताओं को पढ़कर कहा ही जाना चाहिए कविता उनसे नहीं रिझती जो शब्दों के सिर्फ एक ही स्तर पर कविता की गंगा बहाना चाहते हैं।

कविता रिझती है उनसे, जो ठीक रतीनाथ की तरह दैनंदिन के उन सहज और अति-परिचित शब्दों को उनकी अपनी व्यवहारिक पारदर्शिता और वक्रोक्ति को बड़े धैर्य से जज्ब किया करते हैं। और तब शब्द मुहावरों और सुक्तियों की मानिंद कविता में समाने लगते हैं। शब्दों में उभरती बिम्बात्मक बनक पाठकीय रम्यता बटोरने लगती है। यह बनक मन ही नहीं मनीषा तक जा बगरती है। कवि का पहला स्वप्न यहां पूर्ण हो जाता है। यहीं पहुंचकर ही कविता अपने कर्म और धर्म दोनों हाथों से पाठक को कुछ देकर अपनी ओर से कृतार्थ करने में सक्षम हो जाती है।

कभी-कहीं रतीनाथ की कविताओं पर लंबी बातें की जा सकती हैं। फिलहाल वह कविता आप भी पढ़कर देखिए, जिसे मैं 5 बार अभी-अभी दोहरा चुका हूँ, इसलिए कि बड़ी चित-परिचित और निहायत सहज शब्दों से बुनी हुई एक बड़ी कविता मुझे भी स्थायी तौर पर स्मरण रहे-

। हाथ ।
हाथ से हाथ का काम
न लिये जाने पर
हाथ
पैर में तब्दील हो जाते हैं
दो हाथ और दो पैर
बराबर- चार पैर
नाल ठुकेगी जीन कसेगी
लगाम लगेगी
चाबुक हवा में लहरायेगा
सटा ऽ ऽ ऽ क
हाथ का हाथ ही रहना
जरूरी है।!

-जयप्रकाश मानस

कैसे तय होती है ईद की तारीख ?

रमजान के आखिर में एक महत्वपूर्ण धार्मिक त्योहार आता है, ईद। लोग तैयार होकर नए कपड़े पहन कर अपने दोस्तों, परिवारवालों और करीबी लोगों से मिलते हैं। लजीज पकवानों से भरी दावतों का आयोजन किया जाता है। लेकिन दुनिया भर में मनाए जाने वाले इस त्योहार की तारीख आखिर कैसे निर्धारित की जाती है?

दुनिया भर में रहने वाले लगभग दो अरब मुसलमान रमजान महीने के आखिर में चांद देखते हैं। मुसलमान चंद्र कैलेंडर (लूनर कैलेंडर) को मानते हैं। इस कैलेंडर में तारीख का निर्धारण चंद्रमा के अलग-अलग रूपों में दिखने के मुताबिक होता है। रमजान इस कैलेंडर के नौवें महीने में आता है। हर साल इस कैलेंडर में लगभग ग्यारह दिन का अंतर आता है। चंद्र कैलेंडर मुसलमानों के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। इसी कैलेंडर और चंद्रमा को देखकर न केवल रमजान की तारीखों का निर्धारण किया जाता है बल्कि ईद किस दिन है, इसका फैसला भी चाँद देखकर ही किया जाता है।

रमजान में रोजे रखने वाले मुसलमानों को अगर सौर कैलेंडर पर भरोसा होता तो दुनिया में हर जगह रमजान अलग-अलग समय और महीनों में मनाया जाता। कुछ देशों में यह दिसम्बर में आता और कुछ देशों इसे जून में मनाते। लेकिन चंद्र कैलेंडर के हिसाब से सारे मुसलमान दुनिया भर में रमजान एक साथ मनाते हैं। न केवल एक साथ बल्कि बदलती तारीखों की वजह से उन्हें अलग अलग मौसम में रमजान का अनुभव होता है।

ईद का दिन चंद्र कैलेंडर के दसवें महीने च्शव्वालज्की पहली तारीख को आता है। लेकिन इस्लाम में इस बात पर चर्चा होती आई है कि ईद का मूल दिन कौन सा है और इसका निर्धारण कैसे किया जाना चाहिए। कई देशों में मुसलमान खुद चांद देखने के बजाय देश के उन अधिकारियों पर निर्भर करते हैं जिन्हें चांद देखने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। जबकि कुछ लोग इस दिन का निर्धारण सौर कैलेंडर देखकर भी करते हैं। और कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि लोग खगोल विज्ञान की मदद से नया चाँद देखते हैं। पूरी दुनिया कभी भी एक ही दिन ईद नहीं मनाती। हालांकि ईद मनाने की तारीखों में ज्यादा से ज्यादा एक या दो दिन का अंतर होता है।

उदाहरण के तौर पर सऊदी अरब में ईद कब होगी, इसका फैसला तब किया जाता है जब आम जनता में से कुछ लोगों को चांद नजर आया हो। कई मुस्लिम देशों सऊदी अरब की तय की हुई तारीख पर ही ईद मनाते हैं। लेकिन शिया आबादी वाले देश ईरान में ईद की तारीख का निर्धारण सरकार करती है। जबकि इराक, जहां शिया और सुन्नी दोनों मुसलमान रहते हैं, वहां पर दोनों समुदायों के लोग अपने-अपने धार्मिक की नेताओं का अनुसरण करते हैं।

इराक में साल 2016 में पहली बार शिया और सुन्नी मुसलमानों ने एक साथ ईद मनाई थी। जबकि धर्मनिरपेक्ष देश तुर्की ईद के दिन का फैसला खगोल विज्ञान की मदद से करता है। और यूरोप में मुसलमान अपने समुदायों के नेताओं के निर्णय का पालन करते हैं। (बीबीसी)

इन पन्नों के लिए ईमेल- इन पन्नों के लिए एक नया ईमेल बनाया गया है, लेख, रिपोर्ट, कार्टून, फोटो, और अपनी प्रतिक्रिया इस पते पर ईमेल करें aajkal.chhattisgarh@gmail.com